Review Of Research

ISSN: 2249-894X Impact Factor : 3.8014(UIF) Volume - 6 | Issue - 3 | December - 2016

समर शेष है

डॉ सारिका चौधरी

पीएच.डी. (हिंदी साहित्य)- श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय , गजरौला (उत्तर प्रदेश)

सारांश :-

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है और यह हमारे लिए गर्व की बात है किन्तु इसी लोकतंत्र की शक्ति को कुछ अलगाववादी और भ्रष्ट ताकतें कलंकित कर रही है I अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अनेकों समस्याएं भारत को चुनौती दे रही है I राष्ट्रकवि दिनकर इन चुनौतियों से भली भांति अवगत थे और इसीलिए उन्होंने आज़ादी के बाद भी 'समर शेष है' जैसी कविता का सृजन किया I प्रस्तुत शोध पत्र में दिनकर की इसी वर्तमान चिंता को व्यक्त करने का प्रयास किया गया है I

प्रस्तावना :-

सन १९५३ में दिनकर की लिखी यह कविता उनके काव्य संग्रह 'परशुराम की प्रतीक्षा' में सन १९६३ में प्रकाशित हुई आज़ादी के लगभग १६ वर्ष पश्चात् 'प्रणभंग' (१९२९) से लेकर

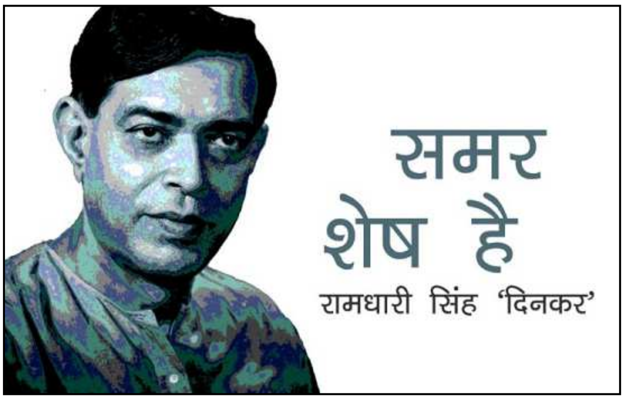

'परशुराम की प्रतीक्षा' (१९६३) तक कवि की राष्ट्रीय संवेदनाओं से ओत-प्रोत काव्य धारा निरंतर प्रवाहित होती रही बीच में कहीं-कहीं,अवश्य उनकी काव्य-प्रवृत्ति परिवर्तित हो जाती है किन्तु उनका कवि-व्यक्तित्व राष्ट्रीयता में ही अपनी अस्मिता की सिद्धि करता है इसलिए वह राष्ट्रकवि की उपाधि से विभूषित हुए किन्तु यहाँ यह स्पष्ट करना ज़रूरी है कि दिनकर का राष्ट्रवाद अंध-राष्ट्रवाद नहीं था वह तो समय की माँग के अनुरूप उसकी उपयोगिता निर्धारित करते हैं दिनकर आज़ादी से पहले जिस राष्ट्रीयता की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते थे,आज़ादी के बाद उसे पशु धर्म और अस्वस्थ दृष्टिकोण मानने लगते हैं स्वराज्य प्राप्ति के पूर्व तक दिनकर ने जीवन में अंतर्राष्ट्रीय पक्ष पर बल नहीं दिया था किन्तु आज़ादी के बाद उन्होंने राष्ट्रीयता के संकुचित दायरे से उठकर अंतर्राष्ट्रीयता की दृष्टि से विचार करना ही उपयुक्त समझा सन १९५४ में प्रकाशित 'नीलकुसुम' काव्य संग्रह की कविता 'राष्ट्रदेवता के विसर्जन' में दिनकर का कवि हृदय राष्ट्रवाद के दुर्बल पक्ष को विसर्जित करता है और राष्ट्रीयता की सीमाओं को तोड़कर अंतर्राष्ट्रीयता के खुले आकाश में विचरण करने लगता है-

"खण्ड-प्रलय हो चुका,
राष्ट्रदेवताI सिधारो,
क्षीरोदधि को अब प्रवाह
जग का धोने दो I
महानाग फण तोड़ अमृत
के पास झुकेगा,
विषधर पर आसीन
विष्णु-नर को होने दो
II"

दिनकर ने समय के साथ चलते हुए यह स्पष्ट कर दिया कि राष्ट्रीय भावों का विस्फोट विषधर नाग है तथा अंतर्राष्ट्रीय भाव विष्णु का प्रतीक है अंतर्राष्ट्रीयता स्वस्थ राष्ट्रीय सोच के आधार पर ही खड़ी रह सकती है वर्तमान समय में राष्ट्,देशप्रेम व राष्ट्रवाद को लेकर जो राजनीति हो रही है, उन्हें भी

दिनकर के राष्ट्र चिंतन से कुछ सीख लेनी चाहिए राष्ट्रकवि दिनकर की मृत्यु के ४२ वर्ष उपरांत भी जब हम उनके काव्य संग्रहों को टटोलते हैं तो वर्तमान समय की अनेक समस्याओं,विसंगतियों से सामना करते हैं जो दिनकर 'रेणुका','हुंकार'में अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ आम जन जीवन को जागरूक बनाते हैं और अपने देश के शौर्ययुक्त अतीत का गुणगान करते हैं,वही दिनकर 'इतिहास के आँसू' ,'धूप और धुआँ' , 'नीम के पत्ते' ,परशुराम तक आते-आते अपने ही देश के नेताओं की कुनीतियों के प्रति आग उगलते दिखाई देते हैं दिनकर को महसूस हो रहा था कि जिन सपनों, आकांक्षाओं, अभिलाषाओं को लेकर आज़ादी की लड़ाई लड़ी गई, वह आज़ादी मिलने के बाद कहीं विलुप्त से हो गए हैं इसीलिए दिनकर का रोष उनके काव्य में उबल पड़ा उनका काव्य जनसमुदाय को न केवल झकझोरता है अपितु राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति जागरूक एवं संवेदनशील भी बनाता है 'रेणुका' काव्य-संग्रह की कस्मै देवाय कविता में कवि उस ज्वाला को सुलगाना चाहता है जो शोषण व अत्याचार को भस्मसात कर दे-

"क्रांति-धात्रि कविते ! जाग, उठ, आडम्बर में आग लगा दे,
पतन, पाप, पाखंड जलें,जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे I"

कवि मात्र अपने देशवासियों को जगाता नहीं बल्कि उन्हें प्रगतिशील आंदोलन की दिशा भी देता है विशेष रूप से 'हुंकार' में कवि देश को साम्राज्यवादी, सामंतवादी और पूँजीवादी शोषण के प्रति विद्रोह करने की प्रेरणा देता है और स्वाभिमान की रक्षा हेतु क्रांति का पक्ष लेता है-

"मैं निस्तेजों का तेज, युगों के मूक-मौन की बानी हूँ;
दिल जले शासितों के दिल की मैं जलती हुई कहानी हूँ;
मैं ज़हर उगलती फिरती हूँ, मैं विष से भरी जवानी हूँ I"

दिनकर ने जो पंक्तियाँ अंग्रेजी साम्राज्यवादी शोषण के खिलाफ लिखीं वह आज उन सभी आंदोलनों का प्रतिनिधित्व करती हैं जो किसी शोषण के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाता है 'अनल-किरीट' कविता में दिनकर कहते हैं-

"ओ मदहोश,बुरा फल है, शूरों के शोणित पीने का,
देना होगा तुम्हें एक दिन गिन-गिन मोल पसीने का I
कल होगा इंसाफ यहाँ किसने क्या किस्मत पाई है,
अभी नींद से जाग रहा युग यह पहली 'अँगड़ाई' है I"

प्रश्न यह उठता है कि कोई युग 'अँगड़ाई' कैसे लेता है ? शायद जब नैतिकता, मर्यादा, संवेदना अपने मूल्य खोते जाते हैं और अन्याय की पराकाष्ठा हो जाती है तब नए विचार, नए मूल्य, नयी सोच, युग को

बदलती है दिनकर मानते थे की यदि देश को नयी परिभाषा में गढ़ना है, विश्व के सामने उदाहरण बनाना है, पुरानी मान्यताओं से लड़ना है और एक स्वस्थ राष्ट्र के स्वप्न को यथार्थ के रूप में रंगना है तो एक नियमबद्ध क्रांति ज़रूरी है इसलिए वे ऐसी क्रांति चाहते हैं जो पारस्परिक विद्वेष की संकीर्ण विचारधारा पर आधारित न होकर इस मनुष्य जीवन को एक स्वस्थ व व्यापक दृष्टिकोण का फलक प्रदान करें-

"क्रांति इसलिए मत करो कि कुछ लोगों से तुम्हें नफरत है,
बल्कि,इसलिए कि ज़िंदगी में, तुम नयी साँस फूँकना चाहते हो I"

'नयी साँस फूँकना' दिनकर की आशावादी और उर्जस्वित सोच को व्यक्त करता है क्योंकि साँस फूँकने का अर्थ ही है प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष कर जीवित रहने की अदम्य इच्छा स्वयं दिनकर का जीवन बचपन से अंतिम क्षण तक संघर्ष व उनसे जूझने का एक जीता-जागता प्रमाण है इसलिए वह 'कुरुक्षेत्र' में स्पष्ट कहते हैं-

"प्रकृति नहीं डरकर झुकती है,कभी भाग्य के बल से,
सदा हारती वह मनुष्य के उद्यम से,श्रमबल से I"

दिनकर के ओजस्वी व क्रांतिपूर्ण काव्यों को लेकर बुद्धिजीवी वर्ग के विचार बंटे हुए नज़र आते हैं यह चिंता की बात है कि एक बहुत बड़ा वर्ग उन्हें मात्र युद्ध का कवि मानता है उनकी सोच है कि दिनकर युद्ध,हिंसा,बर्बरता,आग,प्रतिशोध आदि की बात करते हैं जो मानवता की विरोधी सोच है ऐसे दृष्टिकोण रखने वालों को दिनकर के कुरुक्षेत्र को भली-भाँति अध्ययन करने की आवश्यकता है जिसमें 'युद्ध और शांति' जैसे गंभीर एवं व्यापक विषय को पूरी ईमानदारी के साथ दिनकर ने प्रस्तुत किया है 'साहित्यमुखी' में दिनकर लिखते हैं-

युद्ध से डरने वाले लोग शान्ति-स्थापना में हमेशा असमर्थ रहे हैं शांति की रक्षा आज भी वे लोग कर रहे हैं और आगे भी वे ही लोग करेंगें, जो युद्धों से नहीं डरते; मगर युद्ध रोकने को तैयार हैं आदर्श मनुष्य की सबसे समीचीन कल्पना यह है कि उसे शरीर से बर्बर और मन से साधु होना चाहिए इसलिए कुरुक्षेत्र में वह कहते हैं-

"युद्ध को तुम निंद्य कहते हो, मगर, जब तलक हैं उठ रहीं चिंगारियाँ,
भिन्न स्वार्थों के कुलिश-संघर्ष की, युद्ध तब तक विश्व में अनिवार्य है I"

वर्तमान समय में पूरी मानव सभ्यता परमाणु-बमों के भंडार पर बैठी है एक-दूसरे से आगे बढ़ने व शक्तिशाली बनने की होड़ में मनुष्य अपने मनुष्य होने पर प्रश्न चिह्न लगा रहा है आज अमेरिका हो या चीन, भारत या पाकिस्तान अथवा रूस या उत्तर कोरिया सभी परमाणु शस्त्रों की दौड़ में शामिल हैं यह हथियार पूरी

मानवीय सभ्यता पर गहराता संकट है जिससे दिनकर भी अनजान नहीं थे प्रथम विश्वयुद्ध की विनाशक लीलाओं को देखने के बाद दिनकर की चिंता इन शब्दों में व्यक्त हुई थी

"धरणी चीख कराह रही है दुर्वह शस्त्रों के भारों से,
सभ्य जगत को तृप्ति नहीं अब भी युगव्यापी संहारों से
दलित हुए निर्बल सबलों से, मिटे राष्ट्र उजड़े दरिद्र जन,
आह! सभ्यता आज कर रही असहायों का शोणित-शोषण I

दिनकर द्वारा खींचा गया यह चित्र कहीं न कहीं वर्तमान युग का आईना ही लगता है क्योंकि आज के समय में प्रत्येक शक्तिशाली राष्ट्र दूसरे देश को परमाणु युद्ध की धमकी देने में हिचकिचाता नहीं उत्तरी कोरिया के तानाशाह किम जोंग जैसे सनकी पूरे विश्व के लिए खतरा बन गए हैं शक्तिशाली समुदायों द्वारा कमज़ोर वर्गों का शोषण उसी प्रकार ज़ारी है और राष्ट्रों की उपनिवेशवादी सोच छोटे-छोटे देशों के गले की फाँस बन चुकी है कहने को हम सभ्य एवं सुसंस्कृत हैं किन्तु वर्तमान युग के मनुष्य ने प्रगति के पथ पर असभ्यता व बर्बरता की सभी हदें पार कर दी हैं दिनकर दूरदर्शी थे, उनके संघर्षों ने उन्हें न केवल जूझना सिखाया अपितु उन्हें चिंतक भी बनाया आज़ादी से पहले सब भारतीय एक थे और उनका एक ही शत्रु था- अंग्रेज़ी शासन असली परीक्षा तो आज़ादी के बाद शुरू होनी थी इसलिए १९५१ में प्रकाशित काव्य संग्रह 'धुप और धुआँ' में दिनकर देश की जनता को ललकार कर कहते हैं-

"आज़ादी नहीं चुनौती है यह बीड़ा कौन उठाएगा ?
खुल गया द्वार पर कौन देश को मंजिल तक पहुँचाएगा ?
माँ का अंचल है फटा हुआ इन दो टुकड़ों को सीना है I
देखें देता है कौन लहू दे सकता कौन पसीना है I"

बात कड़वी है पर सच है चुनौती लक्ष्य प्राप्ति की उतनी नहीं होती जितनी उस लक्ष्य को पाने के बाद उसे ईमानदारी व् निष्ठा से निभाने की होती है यही भूल हम भारतीयों ने भी की जिस संकल्प के बल पर हमने आज़ादी पायी हम उसका मूल्य आँक नहीं पाए आज़ाद भारत दो टुकडों में बंटा तो मानवीय मूल्य, संवेदना, आपसी संबंध भी बिखर गए दिनकर जब 'लहू' और 'पसीना' देने की बात करते हैं तो एक ओर तो वह राष्ट्र की सुरक्षा में रत अपने सैनिकों की बात करते हैं और दूसरी तरफ़ वह किसानों, श्रमिकों को इंगित करते हैं राष्ट्र निर्माण में इन सभी का अविस्मरणीय योगदान है, दिनकर यह भली-भाँति जानते थे इसलिए उनकी कविताएँ इनके हितों की आवाज़ बनती है 'हाहाकार' कविता में दिनकर भारतीय किसान का मर्मस्पर्शी चित्र खीचते हैं-

"जेठ हो या पूस, हमारे कृषकों को आराम नहीं है;

छुटे बैल के संग, कभी जीवन में ऐसी शाम नहीं है I
मुख में जीभ, शक्ति भुज में, जीवन में सुख का नाम नहीं है,
वसन कहाँ ? सूखी रोटी भी मिलती दोनों याम नहीं है I
बैलों के ये बन्धु, वर्ष भर क्या जानें, कैसे जीते हैं ?
जुबां बन्द, बहती न आँख, गम खा, शायद आंसू पीते हैं ?

कहा तो यह जाता है कि कृषक भारतीय संस्कृति की आत्मा है किन्तु बीते कुछ वर्षों में किसानों के आत्महत्या के आंकड़े इतने चौंकाने वाले हैं जो यह सोचने को मजबूर करते हैं कि जो देश वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति के नए परचम लहरा रहा है जहाँ अरबपतियों की संख्या विश्व में सबसे अधिक है उसी देश का अन्नदाता कुछ रुपयों का उधार न चुका पाने के कारण आत्महत्या जैसा बड़ा कदम आसानी से उठा रहा है और हम मूकदर्शक बने हैं दिनकर जानते थे कि प्रत्येक किसान का श्रम सोना उगलता है किन्तु तब भी वह ऋणदाता के ब्याज की पूर्ति नहीं कर पाता देश का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्तंभ कृषक वर्ग यदि इसी प्रकार ऋण के दबाव में और आधारभूत सुविधाओं के अभाव में दम तोड़ता रहा तो इक्कीसवीं सदी में विश्व में पूरे विश्व में अपना सिक्का स्थापित करने वाले भारतीय समाज के लिए इससे शर्म व् दुःख की बात और क्या हो सकती है ? यदि नज़र डालें तो वर्तमान समय में भी कठिन परिश्रम करने पर श्रमिकों का एक बड़ा वर्ग निरंतर अभावों से जूझना रहता है भरी दोपहर में माल ढोने वाले मजदूर हो या रेहड़ी-रिक्शा वाले, कुछ को छोड़ अधिकांशत: निरंतर परिश्रम के बावजूद भूखे पेट ही सोने को मजबूर है गंदगी, भुखमरी , बीमारी इस शोषित वर्ग को निचोड़ देती है यह विडम्बना है हमारे देश की कि जिस मेहनतकश वर्ग को सबसे अधिक भरपेट भोजन की ज़रूरत है वो रुखी-सूखी खाने को विवश है और धनाड्य वर्ग के लोग कभी सेहत के नाम पर कुछ नहीं खा पाते और कभी अपनी सुन्दरता बनाये रखने के नाम पर घी, दूध आदि से परहेज करते हैं दिनकर ने इस असमानता को महसूस किया, जिसकी कल्पना भी हमें शर्मिंदगी के बोझ तले दबा देती है-

“कब्र-कब्र में अबोध बालकों की भूखी हड्डी रोती है,
“दूध-दूध I “की कदम-कदम पर सारी रात सदा होती है I
वे भी यहीं, दूध से जो अपने श्वानों को नहलाते हैं I
ये बच्चे भी यहीं, कब्र में ‘दूध-दूध’! जो चिल्लाते हैं I

आंकड़ों के हिसाब से भारतीय समाज में कुपोषण की दर का जो खुलासा हुआ उसके पीछे यही कारण है कि निर्धन परिवार जो दो वक्त की रोटी का जुगाड़ भी नहीं कर पाता वह भला दूध का प्रबंध कहाँ से करेगा ? दिनकर एक और राष्ट्र निर्माताओं की समस्याओं को समझ रहे थे तो दूसरी ओर उनका संवेदनशील ह्रदय राष्ट्र प्रहरियों की गतिविधियों पर भी अपनी पैनी नज़र बनाए हुए था ‘कलिंग विजय’ कविता के माध्यम से दिनकर ने युद्ध के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगा दिया क्या युद्ध करना ज़रूरी है ? युद्ध से क्या प्राप्त होता है ? युद्ध का परिणाम क्या है ? आदि यह सभी प्रश्न आज भी उत्तर की प्रतीक्षा में है कड़वा सच तो यही है कि

युद्ध में केवल एक सैनिक ही शहीद नहीं होता अपितु उसका पूरा परिवार बिखर जाता है, उनके सपने दम तोड़ देते हैं एक सैनिक के परिवार की इस व्यथा को दिनकर ने महसूस किया और 'शांतिवादी' कविता में शांति-शांति का राग अलापने वालों की कड़े शब्दों में भर्त्सना की-

पुत्र मृत्यु के लिए, पिता रोने को,
माँ धुनने को सीस, वत्स आंसू पीने को,
लुटने को सिंदूर,
उत्तराएं विधवा होने को I
माताओं का शोक, युवतियों को विषाद है;
बेकसूर बच्चे अनाथ होकर रोते हैं !
शांतिवादियों! यही तुम्हारा शांतिवाद है ?

भारत ने सदैव अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति की ही वकालत की है ऐसे में प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि यदि वास्तव में देश में शांति है तो प्रतिवर्ष हमारे इतने सैनिक शहीद क्यों हो जाते हैं ? यदि पूरा विश्व शांति चाहता है तो फिर सुरक्षा पर इतना व्यय क्यों ? परमाणु परीक्षण क्यों ? हथियारों पर इतना व्यय क्यों ? लगभग सभी राष्ट्र परमाणु शक्ति सम्पन्न बन रहे हैं, ऐसे में यदि चीन, अमेरिका या पाकिस्तान भारत को युद्ध के संकेत भी देता है तो उसका परिणाम निश्चित तौर पर विनाशकारी ही होगा इस दृष्टि से दिनकर की 'कलिंग विजय' कविता बहुत प्रासंगिक हो जाती है जो पूरी मानव सृष्टि को युद्ध के भयंकर अंत से परिचित कराती है और गंभीर प्रश्नों पर सोचने को विवश करती है

दिनकर का आविर्भाव हिन्दी साहित्य के एक ऐसे मोड़ पर हुआ, जब सम्पूर्ण विश्व में राजनीति एक नए दौर से गुजर रही थी उनके काव्य में विश्व राजनीति और भारतीय राजनीति की उथल-पुथल साफ़ दिखाई देती है उनका यही राजनितिक चिंतन आज के समय की दुविधाओं को जानने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है दिनकर का यह मानना था कि समाज में सम्पत्ति के उत्पादन का उचित विभाजन संसार को बहुत सी समस्याओं- हिंसा, रक्तपात, झगड़ा, हत्या आदि से मुक्त कर सकेगा और सच्ची शांति की स्थापना कर सकेगा इसमें संदेह भी नहीं कि यदि मानवीय गुणों को अक्षुण्ण रखना है तो समानता अपेक्षित है-

"शांति नहीं तब तक, जब तक सुख-भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो, नहीं किसी को कम हो I"

वर्तमान समय में आय, सम्पत्ति, सुविधाओं में होने वाला अंतर इतना अधिक है कि उसके कारण मनुष्य, मनुष्य के प्रति न केवल अपना विश्वास खोता जा रहा है अपितु हिंसक भी बनता जा रहा है आजादी के ६८ वर्ष बाद यह अनिवार्य हो जाता है कि हम देश की वर्तमान स्थिति पर आत्ममंथन करें प्रत्येक

समस्या से रूबरू होकर ही यह पता लगाया जा सकेगा कि आजादी से पहले और बाद के भारत ने क्या खोया है और कितना पाया है ? हमसे कहाँ गलती हुई और हमने कहाँ उपलब्धि प्राप्त की है ? इतने वर्षों में हमने समस्याएँ सुलझाईं हैं या वह समस्याएँ और भयावह रूप में देश का विनाश कर रही हैं ? इक्कीसवीं शताब्दी के दौर में भी हम विषमता, अशिक्षा, कुपोषण, अभाव, जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता, खाप-पंचायत, निर्धनता आदि का निदान पूरी तरह नहीं कर पाए हैं पर्याप्त इलाज व सुविधाओं के अभाव में आम आदमी घुट-घुटकर मर रहा है युवा वर्ग बेरोजगारी से त्रस्त अपराध की शरण में जाने को मजबूर है नेताओं के संरक्षण में भ्रष्टाचार, आतंकवाद, नक्सलवाद, असहिष्णुता, क्षेत्रवाद, साम्प्रदायिक ताकतें पोषित हो रहीं हैं और जनता मूक दर्शक बनी सब कुछ देखने को विवश है किन्तु लोकतंत्र में यह विवशता उचित नहीं क्योंकि जनतंत्र में प्रत्येक नागरिक के मत का मूल्य है इसलिए देश के विकास का दायित्व मात्र सरकार का नहीं, हम नागरिकों का भी है दिनकर शायद यही सीख भारतीय जनता तक पहुँचाना चाहते थे, इसीलिए अपने संघर्ष को ज़ारी रखते हुए स्पष्ट कहते हैं-

"समर शेष है, नहीं पाप का भागी केवल व्याध,
जो तटस्थ हैं, समय लिखेगा उनका भी अपराध II"

डॉ सारिका चौधरी
पीएच.डी. (हिंदी साहित्य)- श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय , गजरौला (उत्तर प्रदेश)